आदिकृषिशिक्षक

भगवान् आदिनाथ

लेखक :
विद्यानन्द मुनि

*

वी० नि० २४९१]

मूल्य :
१० पै० (धर्मार्थ)

प्रकाशिका :
छुट्टनदेवी गोदीका
धर्मपत्नी बाबू दुलीचन्दजी गोदीका
घी वालो का रास्ता, गुलाब कुंज
जयपुर

प्राप्ति स्थान
श्री सन्मति पुस्तकालय,
जयपुर

मुद्रक :
अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स
जयपुर

'अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्'

—आ० समन्तभद्र

प्रजाओं का भाग्य अन्न पर निर्भर है। अन्न उनकी आत्मशक्ति है। यदि अन्न सुलभ रहे तो गति, प्रगति और धर्म-चिन्तन सभी सम्भव है, किन्तु अन्न के अभाव में प्राणबल क्षीण होकर अशक्त हो जाता है और 'अशक्तश्च विपद्यते' जो शक्तिहीन है उसकी मृत्यु हो जाती है। भगवान् आदिनाथ ने अन्न की इस आधार शक्ति को जान कर ही कृषिकर्म की शिक्षा प्रजाओं को दी। 'प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषू. शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा:' आचार्य समन्तभद्र की यह उक्ति प्रजापति भगवान् के प्रजापालन वात्सल्य की ओर इंगित करती है। आज देश को खाद्य समस्या में आत्मनिर्भर बनाने वाले ऐदयुगीन प्रजाप्रमुखों के दृष्टिकोण पशुवध, गोवध और मत्स्यकुक्कुट-पालन (भक्षणार्थ) योजना प्रस्तुत कर रहे हैं। स्कूलों में बालकों को मुर्गी के अण्डे देकर (निःशुल्क) पुष्ट बनाने की पशुवत् समर्थक भौतिक क्रियान्विति करने जा रहे हैं। किन्तु मानव का यह पेट म्युनिसिपैलिटी का 'कूड़ास्थल' नहीं है जिसमें यत्किंचित् डाल दिया जाए। इस पेट के पीछे एक संस्कृतिपरम्परा है जो खाद्य-अखाद्य का विवेक करती है। दूध पानी को अलग करने वाला तथा मोती चुगने वाला हंस उत्कृष्ट होते हुए भी तिर्यक् है, पशु है। मनुष्य तो प्राणि-जगत् में सर्वश्रेष्ठ है। क्या वह हंस के जितना विवेक भी नहीं रख सकता? मानव का जीवन तो संयम पर आधारित है। इन्द्रिय संयम और जिह्वा संयम न रखा तथा मार्ग चलते चाहे जहां और चाहे जो कुछ खाते रहे तो शुचिता की अविच्छिन्न परम्परा उच्छिन्न हो जाएगी और यह परम्परा ही संस्कृति मर्यादा की 'ढाल' है। इसके बिना

समाज अरक्षित हो जाएगा और संस्कृति के नेतृत्व से वंचित होकर सर्वभक्षी भौतिकवाद का दास बन जाएगा। आदि कृषिशिक्षक भगवान् प्रजापति ने इसी दूरगामी सत्यपरिणाम को लक्ष्य में रखकर कृषि की शिक्षा दी थी। आज भी उनके द्वारा उपदिष्ट पथ में ही चारित्र और प्राण दोनों का त्राण हो सकता है। प्रस्तुत लेख जिनसेन आचार्य के 'आदिपुराण' की उसी सूत्रात्मकता का उपबृंहणमात्र है। आशा है, इसे पढ़कर शाकाहार के आग्रह को समर्थन मिलेगा तथा भगवान् आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट कृषिधर्म की आवश्यकता को राष्ट्र के प्रबुद्धचेता नेता अनुभव करेंगे।

जयपुर वी. नि २४६१ —विद्यानन्द मुनि



आदिकृषिशिक्षक भगवान् आदिनाथ

'जयन्ति निर्जिताशेषसर्वथैकान्तनीतयः ।
सत्यवाक्याधिपाः शश्वद् विद्यानंदा जिनेश्वराः॥'

वर्तमानकाल में इस लोक की संज्ञा कर्मभूमि है । यहां प्राणियों के शरीर की रचना उनके कर्मकर होने की सूचना देती है। मानव के सबल हाथ-पांव उसे कर्मों में सहायता देने वाले हैं । उसका बुद्धि-विभव कर्मनियोजन में सहायक है । इस प्रकार मनुष्य तथा अन्य प्राणिजगत् के कार्यकलाप इस संसार को कर्मभूमि, कर्मक्षेत्र प्रमाणित कर रहे हैं । किन्तु जन श्रुति के अनुसार कर्मभूमि से पूर्व युग में यह भूमि भोगभूमि थी और इस पर सर्वत्र कल्पवृक्षों की बहुलता विद्यमान थी । मनुष्य को बिना किसी परिश्रम के आहार उपलब्ध हो जाता था और जीवन नाना प्रकार के सुखोपभोगों से भरापूरा था । आवश्यक वस्तुमात्र के अनायास उपलब्ध होते रहने से मनुष्य में हिंसा, चौर्य और संग्रह वृत्ति का अभाव था। इस प्रकार वह कल्प-वृक्ष युग मानव का भोगभूमि युग था, जिसमें जीवन के सभी साधन पुष्कलता से मिल रहे थे । किन्तु प्रकृति के नियम के अनुसार सुख-दुःख, रात्रि-दिन और जल-स्थल परिवर्तित होते ही रहते हैं और इनका उत्पादव्ययचक्र कभी अवरुद्ध नहीं होता । परिणामतः कल्प-महीरुहों का युग समाप्त हो गया और कृतयुग आ पहुँचा । कल्पयुग में मानससंकल्पमात्र से अभिलषित वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती थी और आगे आने वाले इस कृतयुग में मनुष्य के प्रयत्नों से (कृत से) इच्छित उपलब्धि होने लगी इसलिए इसे कर्मभूमि की

और मानव के कृत से, प्रयत्न से, कार्य से उसे जीवनीय सुखों की प्राप्ति सम्भव रही। प्रजाओं के जीवन में क्रान्ति आ गई। जो आज तक बिना श्रम किये कल्पतरुओं की अशेष इच्छापूरण छाया में आवास करते थे, उन्हे वृत्ति के लिए कष्टों का सामना करने को वाध्य होना पड़ा। महापुराण में इस बदलते हुए युग मे प्रजाओं की मानसिक दशा का वर्णन करते हुए आचार्य जिनसेन ने जिन तथ्यों की ओर सकेत किया है, वे बहुत मर्मस्पर्शी है। वह लिखते हैं—

> 'कल्पद्रुमेषु कात्स्न्र्येन प्रलीनेषु निराश्रयाः।
> युगस्य परिवर्तेऽस्मिन् अभूवन्नाकुलाः प्रजाः॥
> तीव्रायामशनायायामुदीर्णाहारसंज्ञया ।
> जीवनोपायसंशीतिव्याकुलीकृतचेतसः ॥—३।१६०-६१

'कल्पवृक्ष अदृश्य हो गये, सर्वथा लुप्त-लीन हो गए। उस समय प्रजाएं निराश्रय (आश्रयविहीन) होकर आकुल-व्याकुल हो उठी। भूख की तीव्रता से उन्हे जीवित रहना सन्देहास्पद लगने लगा।' वे चिन्ताकुल होकर सोचने लगे—अहो! अब हम कैसे जिएगे? हा! हमारे पुण्यों का अवसान हो गया। कल्पवृक्षों के स्थान पर उनसे भिन्न पत्र-पुष्प, त्वचा, वर्ण और फलों वाले कुछ ये वृक्ष दिखाई दे रहे है। किन्तु कौन जाने, ये विषमय हैं अथवा अमृत-मय। इनका आस्वाद कैसा है? मधुर या कटु-कषाय? हमें बहुत तीव्र बुभुक्षा बाधित कर रही है और इन अपरिचित वृक्षों की फल-भार विनम्र शाखाएं हमें सकेत दे देकर मानो, बुला रही है। क्या इन्हें छोड़ दिया जाए? आहोस्वित् खा लिया जाए? आह! क्षुधा से बुद्धि-विवेक कुण्ठित हो गया है। इनका उपयोग कैसे हो? हा! संकट में किसे पूछें? कौन मार्ग बताए? इस प्रकार अनेक दुश्चि-न्ताओं से पराभूत हुए वे प्रजाजन अपनी शकाओं को दूर करने तथा पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने के लिए तदानीन्तन युगमुख्य नाभिराज के

समीप पहुंचे। नाभिराज चौदहवें मनु थे। अपारबुद्धि के धनी तथा प्रजाहितैषी थे। उनके सम्मुख उपस्थित होकर उन्होंने दीनवाणी मे कहा—हे नाथ ! हम कैसे जियें ? और उन्होंने कल्पवृक्षों का अभाव तथा उनके स्थान पर उगे हुए अन्य फलवान् वृक्षों की ओर संकेत करते हुए पूछा कि क्या हमें भूखों मरना पड़ेगा या इन नवोत्पन्न वृक्षों में लम्बमान फलों का सेवन हितकर होगा ? आप सब जानते हैं अतः कृपया बताइए। आपकी प्रजाओं पर प्राणसकट का अवसर उपस्थित हुआ है। नाभिराज ने सुना और कठिनाई को समझा। वह केवल १४ वें कुलकर ही नहीं थे अपितु आदितीर्थंकर भगवान् आदिनाथ के जनक भी थे। जिस समय आदिनाथ गर्भ में थे, देवों ने नाभि के घर को रत्नवर्षा से मकुल कर दिया था। इसलिए बालक का नाम हिरण्यगर्भ रखा गया। माता मरुदेवी के गर्भ से अवतीर्ण इस युगपुरुष के गुण-कर्म प्रचोदना से अनेक नाम रखे गये जिनसे इनके विलक्षण होने का गर्भवास के समय मे ही पता चलने लगा था। नाभिराज ने प्रजाओं को अवधिज्ञानी पुत्र आदीश्वर की ओर संकेत कर कहा कि अपनी शकाओं का समाधान इनसे प्राप्त करो। भगवान् आदिनाथ ने प्रजाओं के लिए उपस्थित हुए युगान्तरजनित संकट को तथा परिवर्तन को अनुभवा और कहा कालचक्र के परिवर्तन से भोगभूमि का अन्त हुआ। अब कर्मभूमि मे कर्म करते हुए जीवन मार्ग को दैवी बनाने का प्रयत्न करो। उन्होंने बताया कि—

'असिमंषी कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च।
कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥'

—आदिपुराण १६।१७९

अब प्रजाओं को जीविकोपार्जन के लिए कर्म करना होगा। असि, मषी, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प जीवन में ये छः प्रकार के कर्म आवश्यक हैं। इनमें असि, मषी, विद्या, वाणिज्य और शिल्प

पांचो कर्म कृषि पर निर्भर हैं। अतः प्राणरक्षार्थ कृषि करो। कृषि का अर्थ करते हुए उन्होंने बताया—'कृषिर्भू कर्षणे प्रोक्ता' पृथ्वी के विलेखन को कृषि कहते हैं। जैसे अनार को चीरने से उसमें से रसपूर्ण दाने निकलते है उसी प्रकार पृथ्वी को हलमुस से दीर्ण करने और उसमे बीज बोने से तुम्हे प्राणरक्षक अन्न की प्राप्ति होगी। जैसे पूर्वकाल मे तुम्हे कल्पवृक्षों से इच्छानुकूल फल मिलते थे उसी प्रकार आज तुम्हे इन कर्मभूमि मे स्वय उत्पन्न पादपों से फलावाप्ति होगी। देखो, ये लम्बे दण्डाकार खड़े हुए 'इक्षु' हैं, इन्हे निष्पीडित करने से तथा दांतों से दबाकर चूसने से मधुर जीवनोपयोगी रस मिलेगा। ये औषधिया है और खड़े हुए डंठल से प्रतीयमान ये अन्न-प्ररोह है। इनमें ये विषपादप है जिन्हे खा लेने पर मृत्यु अवश्यम्भावी है। इत्यादि उपदेश देते हुए भगवान् आदिनाथ ने कर्मभूमि की व्यवस्था की। आदि पुराण का वचन है कि—

'आषाढमासबहुलप्रतिपद्दिवसे कृती ।
कृत्वा कृतयुगारम्भं प्राजापत्यमुपेयिवान् ।।'१६।१९०

आषाढ मास, कृष्णपक्ष प्रतिपदा के दिन भगवान् आदिनाथ ने कृतयुग का आरम्भ किया और इस प्रकार प्रजाओं की रक्षा करने से 'प्रजापति' पद धारण किया। आचार्य समन्तभद्र ने भगवान की इसी भूतानुकम्पा को छन्दोबद्ध करते हुए लिखा है—

'प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा :।।' स्वयम्भूस्तोत्र–२

प्रजापति भगवान् आदिनाथ ने जीवनेच्छा रखने वाली प्रजाओं को कृषिकर्म मे शिक्षित किया। आदिपुराण का सूक्त है कि—

कृष्यादि कर्मषट्कं च स्रष्टा प्रागेव सृष्टवान् ।
कर्मभूमिरियं तस्मात्तदासीत्तद्व्यवस्थया ।।'

भगवान् आदिनाथ का कृषि के लिए यह आग्रह न केवल प्रजाओं के निमित्त अन्नोत्पादन-शिक्षणार्थ था अपितु इसमें एकसा रिवक-रहस्य भी था कि अन्न के अभाव में यदि प्रजाओं का भक्ष्याभक्ष्य-विवेक लुप्त हो गया तो यह बहुत ही भयकर होगा। क्योंकि, यह अन्न की समस्या मनुष्य के प्राणों की समस्या बन जाती है। अन्न के अभाव में मनुष्य में चारित्र का अभाव उत्पन्न हो सकता है। किसी नीतिकार ने कहा है कि—'सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूला.' एक अन्न की मुट्ठी के लिए ससार भर के कार्यकलाप चलते हैं। दुर्भिक्ष की छाया मानव की चेतना पर भी पडती है और जैसे यह भूमि को अन्नाकुरहीन कर देती है वैसे मनुष्य प्रकृति को भी दारुण बना देती है। बिल्हण कवि ने राजतरंगिणी में कहा है—'दुर्भिक्षेण जनक्षय.' अकाल से जनक्षय होता है। दुष्काल में मुनियों को 'सल्लेखना' लेने का विधान शास्त्र में विहित है। 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' भूखा व्यक्ति कौन-सा पाप नही कर सकता। एक हिन्दू भक्त ने तो यहां तक कह दिया कि—

भूखे भजन न होय गोपाला।
ले लो, अपनी कंठी-माला॥

भला, भूख से तिलमिलाते प्राण भजन मे तन्मयता कैसे रख सकते हैं? गोपाल की दी हुई कंठी-माला तो उदरगुहा मे अन्नदान करने पर ही धारण की जा सकती है। 'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः' आहाररहित शरीरी के विषय लौट जाते हैं। किन्तु यह साधना के मार्ग में स्वयंकृत उपवास की बात है जो विषयों के वेग को निष्प्राण करने के लिए है। फिर भी इतना तथ्य तो है ही कि बिना खाये-पीये प्राण उछल कर कण्ठ में और फिर आंखों में आ जाते हैं। क्योंकि 'इयमुदरदरी दुरन्तपूरा' यह पेट की गुहा दुष्पूर है। प्रतिदिन इस अन्धकूप में कुछ न कुछ डालना होगा।

यही सोचकर भगवान् प्रजापति ने अन्नोत्पादन के लिए कृषि का निर्वचन किया। अहिंसक जैन संस्कृति के विधाता प्रजाओं को इससे श्रेष्ठ मार्ग क्या बता सकते थे ? कुछ लोग शंका करते है कि कृषि करने वाले किसान के द्वारा क्या हिंसा नहीं होती ? भूमि-विलेखन करते हुए न जाने कितने कीट हलमुख से मरते होंगे। किन्तु उनका यह कहना अयुक्त है। क्योंकि हल से भूमिदारण करते हुए कृषक के भाव कीट-भृंग की हिंसा के नहीं हैं, अपितु उत्पन्न होने वाले अन्न से प्राणिरक्षा के हैं। परिणाम विशेष से ही उसकी हिंसकता अथवा अहिंसकता चरितार्थ होती है। एक मत्स्यवधिक जाल अथवा 'वसी' डालकर दिन भर जलाशय पर बैठा है और सारे दिन मे एक भी मछली उसके जाल में नही फसी। इधर एक किसान के हल के नीचे कितने एक क्षुद्रजीव अजाने ही कुचले गए। शास्त्रकारों का बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय है कि यहां मत्स्यमार ही पापी है। क्योंकि वह मारने के संकल्प लेकर ही जाल लगाये बैठा है। किसान तो सस्य के लिए कर्मरत है। यदि एक शल्यचिकित्सक रोगी के किसी अंग में चाकू चुभाता है, उसे चीर देता है तो क्या वह पाप है ? पाप की परिभाषा भावबोध्य है। इसी आशय को व्यक्त करते हुए तत्वार्थवृत्ति में लिखा गया—

अघ्नन्नपि भवेत् पापी, निघ्नन्नपि न पापभाक् ।
परिणामविशेषेण यथा धीवर–कर्षको ॥

इस प्रकार शाकाहारी विश्व की रचना करते हुए भगवान् आदिनाथ ने 'कृषि' का उपदेश दिया। यह कृषि का उपदेश उनकी प्राणिदया का निदर्शन है। उनकी सत्वानुकम्पा का उदाहरण है। अहिंसक दृष्टिकोण का बीज है। गेहूं के बीज से गेहूं उत्पन्न कर उन्होंने प्रजाओं को यह भी बता दिया कि मानव सदा से मानव है, वानर नहीं। डार्विन ने मनुष्य को जो वानर बता दिया उसका

प्रतिवाद करते हुए गेहूँ, जौ, चावल और अन्यान्य वनस्पतियों के अंकुर, फलोद्गम बांहें उठाकर मानो घोषणा करते हैं कि हम बीजप्रकृतिक हैं, सहस्रों गर्भाधान भी हमारे मूल जाति रूप से हमें पृथक् नहीं कर सकते। अनादि काल से हम चावल ही उत्पन्न हो गये हैं। हो रहे हैं! मनुष्य आज भी मनुष्य है और वानर आज भी वानर। 'डार्विन' का सिद्धात, सिद्धात नहीं भ्रम है। अस्तु,

इस प्रकार अन्नोत्पादन का मार्गदर्शन करने वाले सर्व-प्रथम भगवान् आदिनाथ हुए। अन्न के उत्पादन पर आग्रह रखने का आशय यही है कि इससे निरवद्य सात्विकता का मिश्रण रक्त में होता है। लोकोक्ति है कि 'जैसा खाये अन्न, वैसा पाये मन।' यथा मतिस्तथा गति· जैसी बुद्धि वैसी गति। पश्चिम के राष्ट्र एक के बाद दूसरा युद्ध रचाते रहे हैं। क्योकि वे मांसाहारी हैं। मांसाहार विचारों में से सत्ववृत्ति का संहार कर देता है। पशुमास के लोलुप हो नरमास भक्षण के लिए युद्ध का तरीका अपनाते है। यदि वे मांसाहार छोड दें तो उनका मस्तिष्क युद्धरचनाओं से हटकर शांति प्रयासों मे तत्पर हो सकता है। कुछ मासाहारी अपने पक्ष में यह दलील उपस्थित करते हैं कि अन्न कम होने से मास खाते हैं। किन्तु विपुल मात्रा में अन्न का निर्यात करने वाला अमेरिका मासाहारी क्यों है? क्या वहां अन्न की कमी मांसाहार के लिए कारण है? नही, मांसाहार एक व्यसन है। आत्मचेतना शून्य, भौतिक अहंवाद की परिणति है। जिह्वा और मन पर लगा हुआ कुसंस्कार है। इन्द्रियों की आराधना करने वालों द्वारा पालित अभिशाप है। जब मनुष्य की प्राणाग्नि रौरव हो उठती है तब वह इस घोर कदम की मांग करती है। संस्कारविशुद्ध घरों के लोग भी छिपकर इस व्यसन के शिकार हो जाते हैं। यह आहार मनुष्य के विचारों, प्रकृति और संस्कारों का परिचायक है। व्रती और संयमियों का मार्ग

'अस्वाद' का है और जो विषयाग्रही दिङ्मूढ मात्र शरीरी हैं, शरीरवादी है, उन्हें ही जीववधजनित यह आमिषाहार रुचता है। 'आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि.' यह मनीषियों की गवेषणा है। अतः भगवान् ऋषभनाथ के अन्नोपदेश को दृष्टिपथ में रखते हुए कोई भी ईमानदार व्यक्ति यह घोषणा कर सकता है कि भगवान् आदिनाथ ने अहिंसक विश्व रचना के प्रथम सूत्र को आहार में देखा और उसके लिए उपाय चिन्तन किया। उनका यह अनुशासन सम्पूर्ण सत्-संस्कारो की आधार भूमि कहा जा सकता है। क्योंकि 'अन्नमयोऽयं पुरुष:' यह पुरुष अन्नमय है। आयुर्वेद शास्त्र का अभिमत है कि 'रसासृक्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः' मनुष्य शरीर में सात धातुए है। खाये हुए अन्न से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मास से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र बनता है। इस रसपरम्परा मे मूल रसायन पदार्थ के गुण ही सक्रान्त होकर वीर्य तक चले जाते हैं। जो हित-मित और सत् भोजन करता है, उसका प्रभाव उसके परिणामो पर होता है। अतः शांति, सौमनस्य, प्रेम, दया, अहिंसा और विश्वबन्धुत्व के लिए 'अन्नमय' आहार लेना आवश्यक है। अन्नवर्जित आहार का प्रभाव मनुष्य की मति, मेधा, प्रवृत्ति और भावनाओं पर पड़ता है तथा उसे लोभी, दम्भी, स्वार्थी, कदाशय और हीन मनोवृत्ति का बना देता है। आज शत-शत मनुष्यों में जो नैतिक पतन हो गया है उसका कारण आहारविवेक न रखना भी है। आहारविवेक मे केवल अन्न ही सम्मिलित नही है, अपितु अन्नोपार्जन में जो वृत्ति की शुद्धता है वह भी कारण है। न्यायोपार्जित वित्त से क्रीत अन्न का ही परिणाम शुभोदयी होता है। क्योंकि बीज में ही वृक्ष के अशेष अवयव धर्म समाहित हैं। यदि बीज विषाक्त है तो वृक्ष और उसके फल में माधुर्य का समावेश कैसे हो सकता है? 'यथा मूलं तथा चूले' यह सिद्धांत है। यह सिद्धात साध्य और साधन के विषय में पश्चिम की नीति से

भिन्नता रखता है। जहां दूसरों का मत है कि साधन कैसे भी हों, हमें तो साध्य को प्राप्त करना है, वहां जैन दर्शन की दृढ़ मान्यता है कि साध्य तक पहुँचने और उसकी पवित्रता रखने के लिए साधनों की शुचिता अपरिहार्य है। धर्म के दस लक्षणों को देखकर इस पवित्रता का अनुमान लगाया जा सकता है। धन-प्राप्ति के लिए न्यायमार्ग का समर्थन करते हुए अचौर्यपालन की शिक्षा जैन धर्म देता है। यह नहीं कि—

घटं भिद्यात् पटं छिन्द्यात् कुर्याद् रासभरोहणम् ।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् ।।

प्रसिद्धि की दुर्दमनीय लालसा रखने वालों को लक्ष्य रखकर कवि कहता है कि लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह घड़े को पटक कर तोड़े, बीच बाजार में कपड़े फाड़ डाले, गधे पर बैठकर निकले, कोई भी उपाय करे और प्रसिद्ध हो। यहां '*येन केन प्रकारेण*' *साधनों की विपर्यस्तता को सूचित करता है* किन्तु यह उचित तथा नीतिमय पन्था नहीं है। जो प्रत्येक चरण उठाते समय *सम्यक्त्व का* चिन्तन करते हैं, उसे हृदय में रखते हैं, आंखों की पलकों पर उठाये हुए होते हैं, उनके क्रिया-कलापों में साधनों की विशुद्धि परम आवश्यक है। जीवन को विशुद्ध रखने के लिए इसी साधनशुचित्व को अन्तरंग में रखकर भगवान् आदि-नाथ ने कृषि का उपदेश दिया। आज के दिग्भ्रान्त नायकों ने राष्ट्र को अशुचिता के हाथ बेच दिया है। उदर भरण के लिए वैदेशिक अन्न का आयात करने पर भी उन्हें मत्स्य-मुर्गीपालन में राष्ट्रीय क्षुधा की शांति दिखाई देती है। विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए गोहत्या आवश्यक प्रतीत होती है। सुभाषित के समान मधुर तथा साधु के समान निर्दोष गौ को मार कर गोपालक गोपालकृष्ण के राष्ट्रीय सहोदर और महावीर भगवान के अहिंसक देश के प्रतिनिधि

व्यापारी किस अन्ध पातक के अतल गह्वर में गिरे जा रहे हैं, यह वक्तव्य क्या 'जाग्रतप्रबोध'मात्र नहीं है। जिह्वालोलुपता के शिकार मांस में मास की आहुति दे रहे है। यह शरीर, जिसमें आत्मा का निवास है, जिसके सहयोग से देवत्व और उससे उत्कृष्ट अमर विभूतिपद मिल सकता है, विवेकहीन होकर उन दुर्गन्धियों के ढेर को चक्कर लगा रहा है जिनको देखकर भी घृणा होती है। संस्कारों के जहाँ संकीर्तन होते हैं, पवित्रता के घण्टे गू जते हैं, धर्म के दस विभूति चरणो को जहा हृदयगम किया जाता है, जहा के लोग आज भी सात्विकता के पक्ष में हैं, मुनियों, महर्षियो का वैयावृत्य जिन्हे प्रसन्न करता है, वहां रौरव नरक का दृश्य उपस्थित करने वाले 'बूचड़खाने' अन्न की कमी के नाम पर, मुद्रास्फीति की दुहाई देकर और जिह्वा की खोटी मांग से लाचार होकर चलाए जाएं वहा के पाप को गगा की धारा, अकलंक आचार्य का दिग्विजय और मुनि-महर्षियो का धर्म प्रवचन कितना प्रक्षालित कर सकता है? इक्ष्वाकुवश के महाराजा दिलीप ने एक गाय की रक्षा के लिए अपने प्राण देने के सकल्प व्यक्त किये थे और आज अन्ननिर्भर होने की इच्छा रखने वाला भारत कृषि के परम सहायक गोवंश पर आरा चलाए, यह समर्थन कौन पंडिताभिमानी अर्थशास्त्री करना चाहता है? अनिवार्य क्षुधा से पीड़ित व्यक्ति क्या अपने अंग काटकर उदराग्नि को शात करने की सोच सकता है? यदि नही, तो खाद्य मे मिलावट और शुद्ध घी-दूध की न्यूनता से परेशान भारत अहिंसा नीति को छोडकर पाश्चात्य संस्कारों की 'देखादेख' आधी मे क्यों उड रहा है। वृक्ष की जडे काटकर छाया चाहता है, पत्रो और शाखाओं की हरियाली स्थिर रखने के स्वप्न देखता है। माता के स्तन काटने से क्या दूध मिल सकता है। मुर्गियों को पालकर गोवध पर प्रतिबन्ध नहीं लगाना उपले(करीष) सुखाने के लिए केसर जलाना है। यदि देश कृषि की ओर न लौटा तो

'नवनिर्माण' के नाम पर भारतीय संस्कृति के वन को [illegible] की भेंट चढ़ाने वालों को अमृत फलों और शांति की छाया से वंचित होने से कोई नहीं रोक सकेगा। जूता पहनने से क्या पृथ्वी पर कंटक नहीं रहेंगे? आंख मूंद कर गर्त की ओर दौड़ने वाले क्या पतन से भी बच सकेंगे? विष की शीशी पर 'अमृत' का लेबल चिपकाने से क्या वह मारक नहीं रहेगा? [illegible] की सहृय भूठ से वनस्पति तेलों को गव्य की स्पर्धा में [illegible] वाले कितने काल जियेंगे? मिथ्यात्व का यह अन्धकार [illegible] है सूर्य को राहु बनकर कितने काल छलेगा? और [illegible] की दिवाकर की ऊंचाइयों तक ले जाने वाले वध [illegible] प्रकाश मानने का दुस्साहस करते रहेंगे? जब [illegible] के प्रति तीव्र विरक्ति का वातावरण तैयार हो रहा है [illegible] आगन्तुक भारतीय सात्विक रसोइयों के लिए [illegible] टोस्ट, डबलरोटी और केक पर उपमा देने लगे हैं [illegible] विज्ञान का आचार्य, छत्तीस व्यजनों और [illegible] कुशल सूपकार भारत माल उधेड़कर स्वाद [illegible] अपने नाखूनों को डुबो रहा है। कृषि के [illegible] होकर कृषि जीवन की धन्यभाग्या पवित्रता [illegible] जा रहा है? जिस जिह्वा पर भगवान के [illegible] मांस रखते हुए उनका हृदय इस विसंगति [illegible] नहीं हो जाएगा? जिन हाथों से [illegible] सौभाग्य मिलता है उन्ही से अस्पृश्य [illegible] नहीं हो जाएंगे? क्या वे हाथ फिर [illegible] आगम शास्त्रों को उठाकर आंखों तक [illegible] पीढ़ियों से समिद्ध सात्विक [illegible] ओ अभागो! उठो, जागो और [illegible] 'अन्न' रत्न है, प्रजापति आदि ब्रह्मा [illegible]

'पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्' जल और अन्न को अमृत बताया गया है। अतः अन्न खाओ, विवेक न खाओ। कृषिपण्डित बनो और कृषि जीवन बिताओ। आज उपार्जनबुद्धि से प्रेरित होकर ग्रामीण जनता बड़े नगरों की ओर दौड़ी चली आ रही है। उनके हल बरसाती भूमि की सौंधी सुगंध पीने के लिए तरस रहे हैं, बीज को कीड़ा लग रहा है और शस्यश्यामल होने के लिए अनुप्तभूमि तरस रही हैं। चलो, लौट जाओ पुन ग्रामों की ओर और उत्तम किसान बनकर इन्सान की जीवनी के सूत्रधार बनो। बाहर से कब तक मंगाओगे? विदेशियों को अपना भूखा पेट दिखाते लज्जा नहीं आती? किन्तु स्मरण रहे, जब तक व्यक्ति आत्मनिर्भर नहीं हो जाता उसे सुख नहीं मिलता देश की क्षुधा का निवारण विदेशों के आयात पर नहीं, किसानों के खलिहानों पर निर्भर है। खलिहानों में अन्नकूट लगाकर समृद्धिलक्ष्मी का दोहन करो। हाथ फैलाकर कुछ कण मांगने से कितने दिन याचक-जीवन की हीनता का बोझ ढोओगे? अन्न जीवन की प्रथम और प्रमुख आवश्यकता है। बाजारों में घूमते हुए जरा ध्यान से देखो, शृंगार प्रसाधनोंकी हाट उफन रही है। वेषविन्यास के बाजार भरे पूरे हैं किन्तु अन्न की बोरियां खाली हैं। क्या तुम वेषविन्यास से सज-संवर कर जी सकते हो? क्या बिना जठराग्नि को शान्त किये क्रीम की पालिश और रूज की लालिमा चेहरे को गुलाब बनाये रख सकती है? क्या खाली पेट गीत, नृत्य, वाद्य पर मुसकिरा सकते हो? क्या खेल के मैदान में बाजी मार सकते हो? स्वाध्याय, धर्मचिन्तन और यत्किंचित् करणीय कर सकते हो? कदापि नहीं। क्योंकि 'सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः' पैरों की जड़े पेट में हैं। यदि पेट सींच दिया गया है तो पैर सरपट दौड़ेंगे। भूख से जीवन का 'रुख' सूख जाता है, प्राण उड़ जाते हैं। मनुष्य के पास प्रासाद नहीं हो तो वह झोंपड़ी में रह सकता है, झोंपड़ी नहीं तो वृक्ष के नीचे और खुले आकाश की छाया में रह सकता है, वस्त्र के अभाव में फटा पुराना

सकता है। समुद्र का मंथन करने के लिए मन्दराचल मन्थानदण्ड चाहिए। जो धरती को सींचकर उर्वर करते हैं वे वर्षा के बादल नहीं, श्रम करने वाले के स्वेदबिन्दु है। वर्षा के धास और श्रम के पसीने से मोती उत्पन्न होते है। सभी व्यक्ति किसान के सामने याचक है। इसीलिए तो जैनों की सूक्ति है कि—'उत्तम खेती मध्यम व्यापार' खेती (कृषिकर्म) विश्वम्भर होने से उत्तम है। आज भी दक्षिण में लाखों जैन कृषिकर्मा है। महाराष्ट्र के 'तमदलगे' नामक गांव में श्रीभीमगोंडा दादा पाटिल को भारत सरकार ने सर्वप्रथम 'कृषिपण्डित' की उपाधि प्रदान कर ५००० पांच सहस्र का पुरस्कार दिया, वह जैन हैं। क्योंकि गृहस्थो को संकल्पी हिंसा का त्याग है आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा तो आगारधारियों को त्याज्य नही है। कृषिकर्म मे जो हिंसा होती है उसे करने का भाव गृहस्थ का नही है। वह अजाने हो जाती है और उस कृषि के परिणामस्वरूप अनेक जीवों की रक्षा होती है। 'सावद्य-लेशो बहुपुण्यराशि.' भगवान् की पूजा भक्ति करते हुए भी कुछ न कुछ अवद्य अजाने बन ही जाता है किन्तु अनवद्य पूजार्चा तो महा-फला है। यदि अवद्यलेश की शंका से पूजा वन्दना का त्यागकर दिया तब तो सर्वथा अवद्य का प्रवेश जीवन में संकुल हो जाएगा अतः पूजा करते हुए अवद्यलेश बने तो भी भगवदर्चा में बाधा नही आनी चाहिए। यह पूजातत्पर से होने वाला अवद्यलेश अपेक्षानुपात से होने वाले अनवद्य से क्षीणबल है अतः पुण्यराशि है। इसी प्रकार कृषि-कर्म भी कदाचित् क्वचित् अवद्यलेश से सम्पृक्त होकर भी पुण्याधिक ही है। अन्न न मिलने से प्राणधारण भी कठिन हो जाता है। महाराणा प्रताप कितने स्वाभिमानी थे? अकबर जैसे विकट और महाबली सम्राट के विरोध में उनकी मूछों के बल कुन्तो का निर्माण करते रहे। स्वतत्रता के सहस्र-सहस्र अंगारे उनकी आंखों में जलते थे। सघर्षों से लोहा लेने में उन्हे आनन्द मिलता था। किन्तु अपनी

कन्या के हाथ में आधी घास की रोटी को वन बिलाव से छीना जाता देखकर वे भी मोम हो गये। भूख से बिलखती बालिका के साथ उनका धैर्य भी विगलित हो गया। उन्होंने 'तुर्क' को सन्धिपत्र लिख डाला। एक रोटी आजादी के पलड़े को हल्का करती हुई धरती को छूने लगी। यह कोई अवास्तविक बात नहीं और राणाजी के लिए अयशस्कर भी नहीं। मानव अन्नभोजी है, वह इसके बिना जीवित नहीं रह सकता। 'भद्रबाहु' चरित में वर्णन है कि सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में आहार लेकर लौटते हुए मुनो का पेट चीर कर भूखे लोगों ने कवलित अन्न को निकाल कर खा लिया। 'वभुक्षितः किं न करोति पापम्' भूखा कौन-सा पाप नहीं कर सकता? अधिकाश पाप का आरम्भ उदरताप से होता है। किन्तु ज्ञानवान् इसी से विराग का मार्ग ग्रहण करने की प्रेरणा प्राप्त करता है। सम्राट चन्द्रगुप्त ने दुष्काल और उससे व्यथित जनता को देखकर ससार को असार जाना और मुनिदीक्षा लेकर वीतराग हो गये। मुनियों को जब अन्न संकट देख पड़ता है तब वे शान्त भाव से मरणान्तिक 'सल्लेखना' ले लेते हैं। *तथापि यह ज्ञानधनियों से आचरित मार्ग है। जन साधारण* इस पर नहीं चल सकता। अतएव 'सजलां सफलां शस्यश्यामलां' गीत की धुन को सफल प्रमाणित करने के लिए भगवान् आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट कृषिमार्ग को अपनाना राष्ट्र के लिए अत्यन्त उपादेय और हितकर है।